Shodhankur Research Journal

Online Monthly September 2024 VOL -01 ISSUE-I

05

आदिवासी हिन्दी उपन्यास : एक अध्ययन

अमोल पाचपोळे

शोधछात्र, कवचौ उमवि जलगाँव

आदिवासी केन्द्रिगत उपन्यासों में आदिवासियों के जीवन का सर्वांगीण चित्रण हुआ है। जिन उपन्यासों में अथ से इति तक आदिवासी विमर्श विद्यमान है उन्हें ही आदिवासी केन्द्रिगत उपन्यास माना जाता है। इस सम्बन्ध में डॉ. बी. के. कलासवा का मत समीचीन है– ''1 जीवन 2 उपन्यासों का प्रतिपाद्य न केवल आजादी के बाद के गाँवों की उपरी सतह पर दिखायी देनेवाले कर्दम–कीचभरी घिनौनी राजानीति, दलबंदी, जातिवाद, ईर्ष्या–द्वेष, शासकीय भ्रष्टाचार, घूसखोरी, लाल फीताशाही, जड़ता, अंधविश्वास, स्वार्थ और गाँवों की टूटन तथा आपसी रिश्तों का खोखलापन ही है, बल्कि आजादी के बाद आदिवासियों में उत्पन्न एक नयी चेतना, एक नया आत्मविश्वास, संघर्षशीलता, अपने अधिकारों के प्रति सजगता, प्रगतिशीलता तथा हेय रूढ़ी, अंधविश्वास, अन्याय, अत्याचार और प्रक्रियावादी प्रगति विरोधी शक्तियों से लड़नेवाली नयी मानसिकता का भी चित्रण इनका प्रतिपाद्य है।''1 इस प्रकार के उपन्यासों का लेखन सर्व प्रथम सन् 1899 में हुआ जब जगन्नाथ प्रसाद चतुर्वेदी ने 'वसंत मालती' उपन्यास लिखा जिसमें मुंगेर जिले के मलयपुर क्षेत्र के मल्लाह आदिवासियों का चित्रण किया है। इसके पश्चात् ब्रजनन्दन सहाय ने सन् 1904 में विध्यांचल क्षेत्र की पहाड़ियों में बसे आदिवासियों पर 'अरण्य बाला' नामक उपन्यास लिखा। इसी वर्ष मन्नन द्विवेदी ने 'रामलाल' उपन्यास लिखा जिसमें गोरखपुर जिले के बाँसगाँव क्षेत्र के आदिवासियों के जीवन को केन्द्रग में रखा गया है। रामलाल उपन्यास का नायक है जो आदर्श चरित्र है। उपन्यास में आदिवासियों के जीवन के साथ–साथ साहूकार, भगत, पटवारी, पुलिस का भी रेखांकन हुआ है। इसके पश्चात् अयोध्यासिंह उपाध्याय हरिऔंध ने सन् 1907 में 'अधखिला फूल' की रचना की जिसमें आदिवासी जीवन व्यक्त हुआ है। रामचीज सिंह ने सन् 1909 में संथाल आदिवासियों को दृष्टिकेन्द्रग में रखकर वनविहंगिनी उपन्यास लिखा। जिसमें संथाल आदिवासियों का रहन–सहन, वेशभूषा, देवी–देवता, उत्सव–त्यौहार, भाषा–संस्कृति का विवेचन हैं। इसके पश्चात् एक दीर्घ अंतराल के पश्चात् सन् 1947 में वृन्दावन लाल वर्मा का कचनार उपन्यास प्रकाशित हुआ जिसमें गौंड आदिवासियों का चित्रण हुआ है। इसकी नायिका कचनार है।

आदिवासी जीवन पर केन्द्रिगत गहन एवं विस्तृत उपन्यास डॉ. रांगेय राघव ने सन् 1957 में 'कब तक पुकारूँ' लिखा। संपूर्ण उपन्यास 35 अध्यायों में विभाजित हैं। इसमें राजस्थान एवं ब्रज के सीमांचल में बसे गाँव बैरको केन्द्रग में रखकर वहाँ के करनटों को लेकर कथानक बुना गया है। कथा का प्रमुख पात्र सुखराम है जिसका पालन–पोषण उसके अनाथ होने के कारण इसीलानट और उसकी पत्नी सौनाकरते हैं और बड़े होने पर अपनी पुत्री से उसका विवाह कर देते हैं। वह एक कुशल नट बनता है। इस कथा के साथ जयरामपेशा करनटों के समाज जीवन का संपूर्ण चित्रण हुआ है। जिसमें इन आदिवासियों के रीति–रिवाजों, विश्वासों, परंपराओं, उनके शोषण, उनके अपमान का वर्णन हुआ है। इन आदिवासियों के सम्बन्ध में स्वयं डॉ. रांगेय राघव ने लिखा हैं – 'नट कई तरह के होते हैं। इनमें करनट जयरामपेशा कहे जाते हैं। इनकी कोई नैतिकता नहीं होती। इनमें मर्द औरत को वेश्या बनाकर उसके द्वारा धन कमाते हैं ज्यादातर ये लोग चोरी करते है और ढोल मढना, हिरन की खाल बेचना इनका काम है।... ये लोग हिन्दुओं

©Copyright 2024 SSMRJ. All Rights Reserved

के देवी–देवताओं को मानते हैं। ये खानाबदोश होते हैं।''[2] उपन्यासकार ने आदिवासियों के जीवन का यथार्थ चित्रण किया है। जिसमें उनका सर्वांगीण जीवन समाहित है–''डॉ. रांगेय राघव का 'कब तक पुकारूँ' उपन्यास राजस्थान की ृकरनटृआदिवासी जाति को पृष्ठभूमि बनाकर लिखा गया है। जो हिन्दी उपन्यास साहित्य में आदिवासी जीवन केन्द्रिगतउपन्यासोंमें मील के पत्थर के समान है जो केवल 'नट' आदिवासी समाज को ही नहीं संपूर्ण आदिवासी समाज को पाठक के सामने जीवन्त बनाता है।''11रांगेय राघव का ही सन 1960 में प्रकाशित ृधरती मेरा घरृउपन्यास गाडिया लुहारों की जीवनाधार पर लिखा गया है। शानी का 'साप और सीढ़ी' उपन्यास सन् 1960 में प्रकाशित हुआ। इसमें खदानों में काम करनेवाले सोनपुर के आदिवासियों का रेखांकन हुआ है। उपन्यास का प्रारंभ एक आदिवासी बाल विधवा चम्पा के जीवन से हुआ है जो जीविका हेतु एक चायघर प्रारंभ करती है। यहाँ सभी प्रकार के लोग आते हैं जिनमें आदिवासी मजदूर भी हैं। उपन्यास में आदिवासी मजदूरों के आर्थिक शोषण की ओर संकेत किया गया है।

आदिवासी उपन्यासों की परंपरा में मनमोहन पाठक का 'गगन घटा घहरानी' उपन्यास उल्लेखनीय है। इस उपन्यास में पलामु के जंगल में रहनेवाले ओराँव आदिवासियों की गरीबी, उनका पिछडापन, उनका शोषण, उनका विस्थापन और उनके बंधुआ बनने की त्रासदी वर्णित है। उपन्यास का पैरूगुनी सोचता है कि जंगल छोटा होता जा रहा है और इतिहास बड़ा, पर रोज इतिहास में नये–नये अध्याय जोड़ती यह दुनियाँ पठार पर उस जंगल को जंगल में बसे छोटे–छोटे गाँवों को क्या दे रही है। उन्हें परत–दर–परत उखाड़कर कानून और अधिकार के बरछी भाले भोंक–भोंककर कौनसा स्वाद चखा रही है। रायबहादूर जैसे सामंत आदिवासियों को बंधुआ बनाते हैं, उनका शोषण करते हैं और उनके खेतों पर अपना अधिकार कर लेते हैं। वीरेन्द्ग जैन ने विस्थापन की पीड़ा से गुजरनेवाले बुंदेलखण्ड के आदिवासियों का चित्रण सन् 1994 में 'पार' उपन्यास में किया है। यहाँ के आदिवासी अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए वनोपज पर निर्भर हैं। इन आदिवासियों में अशिक्षा के कारण अंधविश्वास व्याप्त है – 'यह उपन्यास इसलिए भी महत्वपूर्ण है कि इसमें समयगत सच्चाईयों को बेहद साहस और ईमानदारी से प्रस्तुत किया गया है। आदिवासियों के विकास के नामपर बदहाली की जो तसवीर पेश होती है वह हमारे तंत्र की पोल खोलने में अभी तक कामयाब हुई है।''4

भगवानदास मोरवाल ने सन् 1999 में 'काला पहाड़' उपन्यास लिखा। इस उपन्यास में हरियाणा, उत्तर प्रदेश और राजस्थान प्रदेशों की सीमा पर स्थित मेवात के मुस्लिम आदिवासियों को केन्द्ग में रखा गया है। आदिवासी मेव मुस्लिम होते हुए भी अल्पसंख्यक हिन्दुओं के साथ शांति से रहते हैं। परंतु तथाकथित स्वार्थी नेता साम्प्रदायिकता का जहर फैलाते हैं। और आदिवासियों का जीना दुभर कर देते हैं। नवें दशक में आदिवासी केन्द्रिगत सशक्त उपन्यास लिखे गये। जिनमें संजीव का सन् 1999 में प्रकाशित ृजंगल जहाँ शुरू होता हैमहत्वपूर्ण उपन्यास है। उपन्यास में भारत नेपाल की सीमा पर स्थित चंपारण जिले के थारू आदिवासियों का रेखांकन हुआ है। ये क्षेत्र डाकुओं के आतंक के कारण ृमीनी चंबलृ कहलाता है। यहाँ के आदिवासियों की व्यथा यह है कि इन्हें डाकू और पुलिस दोनों तंग करते हैं। वैसे थारू आदिवासी बैल चुराने से लेकर लड़कियों को बेचने तक का धंधा करते हैं। आदिवासियों का आर्थिक अभाव ही उनके शोषण का कारण है। आदिवासी समाज का काली डाकू बन जाता है क्योंकि उसके पास कोई काम नहीं है। आर्थिक अभाव है। पहले चीनी मिल बंद हुई फिर खेत में काम नहीं रहा, पत्नी आसन्नमरणा है। इन सारी परिस्थितियों से गुजरते हुए वह डाकू बन जाता है। प्रकाशकीय वक्तव्य में लिखा गया है कि – ''जंगल यहाँ अपने विविध रूपों और अर्थछवियों के

साथ केलेडे स्कोपिक अंदाज में खुलता और खिलता है – थारू जनजाति सामान्य जन, डाकू, पुलिस और प्रशासन, राजनीति, धर्म, समाज और व्यक्ति ... और सबके पीछे से, सबके अंदर से झाकता जहराना जंगल और जंगल को जितने का दुर्निवार संकल्प !''5 उपन्यासकार ने बारह वर्षों के निरंतर श्रमसाध्य शोध से यह अरण्यगाथा प्रस्तुत की है।

मैत्रेयी पुष्पा ने कबूतरा आदिवासियों को दृष्टिकेंद्ग में रखकर अल्मा कबूतरी उपन्यास का सृजन सन् 2000 में किया है। यह उपन्यास बृहद उपन्यास है जिसमें अठारह अध्याय हैं और बुंदेलखंड के कबूतरा आदिवासियों का वर्णन हुआ है। उपन्यास में आदिवासी कबूतरा समाज एवं सभ्य समाज जिसे कज्जा कहा जाता है का चित्रण हुआ है। कबूतरा समाज अपराधी समाज माना जाता है। क्योंकि इनका जीवन चोरी, छीनाझपटी, लूट डकैती आदि पर निर्भर होता है। कबूतरा आदिवासियों की व्यथा उपन्यास की कदमबाई इन शब्दों में व्यक्त करती है –''हमें तो बचपन से ही एक सच्चाई समझाई गई है कि कबुतरी के मर्द की कोई खेती–धरती नहीं होती। कुआँ मौसमों को खतम करो। तालाब पर उनका हक नहीं होता फिर भी जिंदा रहना होता है। अन्नपाणी चुराओ और जुटाओ बिना छत के सोने की आदत डालो।'' 6 कहानी में कदमबाई प्रमुख पात्र है जो संघर्षशील नाही है। कबूतरा आदिवासी किसी निर्जन स्थान पर अपना डेरा डालते हैं। शराब बनाकर बेचना इनका पैतृक व्यवसाय है। इस समाज की समाज व्यवस्था, धार्मिक विश्वास, संस्कृति, अर्थनीति अलग ही है जिसके कारण यह समाज भिन्न रूप में दिखाई देता है। कबूतरा समाज की अपनी पंचायत व्यवस्था हे, जिसमें मुखिया प्रमुख होता है। जो समाज का संचालन करता है। उपन्यासकार ने गहन एवं विस्तृत रूप में कबूतरा आदिवासियों की अशिक्षा, अंधविश्वास, दरिद्गता, रूढ़िग्रस्तता को उभारा है।

तेजिंदर का सन 2002 में प्रकाशित उपन्यास 'काला पादरी' में मध्य प्रदेश में महेशपुर गाँव के आसपास बसे आदिवासी उँराव का चित्रण है। उदयप्रकाश ने उपन्यास के प्रकाशकीय वक्तव्य में लिखा है कि – ''मध्यप्रदेश के गहन आदिवासी क्षेत्रों में घटित छोटी–छोटी घटनाओं और जंगलों के आसपास साँस लेते जीवन का इतना विवरणात्मक संवेदनशील और सूक्ष्म आकलन कथा साहित्य की एक उपलब्धि है।'' 7 यहाँ के आदिवासी अत्यंत दरिद्गता में जीवनयापन कर रहे है। उपन्यासकार ने उनकी आर्थिक दूर्दशा का वर्णन स्पष्ट करते हुए लिखा है कि – ''आदिवासी पीछले कई दिनों से जहरीली जंगली बुटीयाँ खा रहे हैं। और जिले के भीतरी इलाके में तो कुछ लोग अपनी भूख मिटाने के लिए बिल्लियों और बंदरों का शिकार कर उनका माँस तक खा रहे हैं।'' 8 उपन्यास में आदिवासी की मुख्य समस्या भूख का चित्रण हुआ है। आदिवासियों में अंधविश्वास तीव्र रूप में व्याप्त है। थरहरा गाँव का जब कोई आदिवासी भूख के कारण आकुल–व्याकुल होता है, अस्वस्थ हो जाता है। उपन्यास में आदिवासियों की गरीबी उनके अज्ञान के कारण ईसाई अपने धर्म का प्रचार करते हैं। इन लोगों को चाकलेट, दूध, दवाईयाँ वितरित कर उन्हें अपने धर्म की ओर आकर्षित करने का प्रयास किया जाता है।

झारखंड के आदिवासियों पर राकेश कुमार सिंह ने एक उल्लेखनीय उपन्यास लिखा है – 'पठार पर कोहरा' जिसका प्रकाशन सन 2003 में हुआ है। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् झारखंड के परिवेश में एक शोषक वर्ग पनप जिसने आदिवासियों का आर्थिक शोषण किया उपन्यास में आदिवासियों के शोषण, अन्याय, उत्पीड़न की दर्दभरी कथा है। 'पठार पर कोहरा' न सिर्फ झारखंड के आदिवासियों की लय, वेशभूषा, उनकी भाषा, उनका रहन–सहन, उनकी संस्कृति, उनके पर्व त्यौहार, उनके देवी–देवताओं को उठाता है, बल्कि पीढ़ियों से चलते शोषण चक्र को

भी स्वर देता है। साथ ही इसमें ऐसी हताश आदिवासी युवती के आत्मसंघर्ष की कहानी भी है, जो विराट सामाजिक कैनवास पर अपनी जगह तलाश रही हैं।''9

इक्कीसवीं शताब्दी के प्रथम दशक में आदिवासी जीवन केंद्रिगत उपन्यासों का सशक्त लेखन दृष्टिगत होता है। श्रवण कुमार गोस्वामी ने 'हस्तक्षेप' उपन्यास में सन 2003 में सतपुड़ा, बुंदेलखण्ड, बहेलखंड और महादेव की पहाड़ियों में स्थित आदिवासियों के जीवन की त्रासदी व्यक्त की है। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात आदिवासियों के कल्याण के लिए अनेक योजनाएँ बनी, सांस्कृतिक विभागों का गठन किया गया परंतु आदिवासियों का आर्थिक एवं स्त्रियों का दैहिक शोषण होता ही रहा। उपन्यास के केन्द्रग में आदिवासी लड़कियों का छात्रावास है। यहाँ की अध्यापिका डॉ. महुआ चक्रवर्ती जब अधिक्षिका बनती है तब वह लड़कियों को दैहिक शोषण से बचाती है। इसीलिए वह उन्हें सांस्कृतिक कार्यक्रम में जाने नहीं देती इसमें राजनेताओं के आदिवासियों के संबंध में घिनौने विचारों का पर्दाफाश किया गया है। आदिवासियों के जीवन में नेताओं द्वारा हस्तक्षेप उनके जीवन की त्रासदी है।

राकेश कुमार सिंह का उपन्यास 'जहाँ खिले है रक्तपलाश' सन 2003 में प्रकाशित है। इसमें झारखण्ड के पलामू क्षेत्र के आदिवासियों का चित्रण हुआ है। इस क्षेत्र में जंगल दस्ते का अत्यंत प्रभाव है। उनका आतंक सर्वत्र व्याप्त है। जंगल दस्ते के ही कारण पूँजीपति अपना स्वार्थ साध्य करते हैं और आदिवासियों का शोषण करते हैं। वास्तव में जहाँ रक्तपलाश खिलते हो वहाँ आदिवासियों का जीवन खिल नहीं सकता। उनके शोषण का षडयंत्र रचा जाता है।

लेखिका शरद सिंह के 'पिछले पन्ने की औरतें' सन 2005 में प्रकाशित उपन्यास में बेडिया आदिवासियों के जीवन का यथार्थपरक वर्णन किया है। वास्तव में यह उपन्यास लेखिका के बेडिया आदिवासियों के जीवन का शोध पर आधारित उपन्यास है। उपन्यास के प्रकाशकीय वक्तव्य में यह संकेत किया है कि – ''युवा लेखिका शरद सिंह का यह पहला उपन्यास ृपिछले पन्ने की औरतृं बेडनिया समाज की औरतों पर केन्द्रिगत होने के साथ ही उन सभी औरतों के त्रासद जीवन की ओर संकेत करता है जो स्त्री जाति की मुख्य धारा समेटे है और इस पुरूष प्रधान समाज में दैहिक मान और आर्थिक शोषण का शिकार रही है। इस उपन्यास के माध्यम से बेडिया समाज की औरतों के जिस निर्वसन सत्य को पूरी ईमानदारी के साथ सामने रखा गया है वह मन को झकझोर देता है।''[10] उपन्यास की शैली नवीन है जिसमें उपन्यास विधा को फन्तासी से उठाकर रिपोर्ताज की पहली शैली में पिरोया गया है। उपन्यास नारी जीवन की त्रासदी को व्यक्त करता है। लेखिका ने उपन्यास के नाम की सार्थकता को रेखांकित करते हुए लिखा है कि –''एक स्त्री रखैल का जीवन पिछले पन्ने पर दर्ज उस औरत के समान होता है जो पुरूष के जीवन की डायरी में लिखी रहती है। किंतु उसका अस्तित्व उस खुले हुए पन्ने के पीछे दबा रहता है। जिसका नाम है पत्नी। किसी पुरूष की पत्नी उसके जीवन के सामने रखा, खुला हुआ पन्ना है तो उसके ठीक पृष्ठभाग का पन्ना है।'' 11

सन 2005 में मधुकर सिंह का 'बाजत अनहद नाद' प्रकाशित हुआ, यह संथाल आदिवासियों को केन्द्रग में रखकर लिखा गया है। ढोल का बजना यहाँ क्रांति का संकेत है, इस उपन्यास में झारखण्ड के आदिवासियों एवं ब्रिटिश सरकार के संघर्ष का चित्रण है। सन 2006 में प्रकाश मिश्र का 'रूपतिल्ली की कथा' प्रकाशित हुआ। इस उपन्यास में मेघालय में स्थित रूपतिल्ली पहाडी पर बसनेवाली खासी आदिवासियों की व्यथा कथा है।

भगवानदास मोरवाल का ृरेतृ उपन्यास सन 2008 में प्रकाशित हुआ। इसमें कंजर अर्थात काननचर आदिवासियों का चित्रण हुआ है। उपन्यास के केन्द्रग में आदिवासी क्षेत्र का गाजूकी

गाँव है। इस गाँव में स्थित कमला सदन को केन्द्रग में रखकर उपन्यास का तानाबाना बुना गया है। कमला बुआ दबंग स्त्री है उसके संरक्षण में ही वेश्या व्यवसाय चलता है। रूक्मिणी उपन्यास की प्रमुख चरित्र है। उपन्यास के शीर्षक की सार्थकता रूक्मिणी और वैद्यजी के इस संवाद में निहित है – ''वैद्यजी यह रूक्मिणी तो ऐसी रेत है जिसे चाहे हवा अपने साथ उड़ा ले जाए...जैसा चाहे पानी बहा ले जाए। और तो और जिसके जी में आए अपनी मुट्ठी में कैद कर ले जाए। क्या है इसका अपना ? कुछ भी तो नहीं। भला रेत का भी कोई अपना वजूद होता है।''12 यही रूक्मिणी संघर्ष करते हुए राजनीति में सफल होती है और अपने दाँव पेंच के द्वारा उपमुख्यमंत्री बन जाती हैं। उपन्यास अत्यंत रोचक शैली में लिखा गया है।

रणेन्द्रग का उपन्यास 'ग्लोबल गाँव के देवता' सन 2009 में प्रकाशित हुआ। इसमें झारखण्ड के आदिवासियों की त्रासदी व्यक्त हुई है। प्रकाशकीय वक्तव्य के अनुसार हाशिए के मनुष्यों के सुख दुख को व्यक्त करता हुआ यह उपन्यास झारखण्ड की धरती से उपजी महत्वपूर्ण रचना है। इसमें असूरों की अपराजय जिजीविषा और लोलुप लुटेरी टोली की दुर्भिसंधियों का हृदयग्राही चित्रण है। असुर आदिवासी तीन वर्गों में विभाजित हैं – वीर असुर, अगरिया असुर और बिरिजिया असुर। ग्लोबल गाँव के देवता इनका शोषण करते हैं। वे सैटेलाईट के माध्यम से छत्तीसगढ़, उडिसा, मध्यप्रदेश, झारखण्ड आदि राज्यों की खनिज संपत्ती का शोध करते हैं और उस पर अपना अधिपत्य जमाते हैं। फलस्वरूप यहाँ के आदिवासियों का जीवन दयनीय बन जाता है। श्रीमती अजित गुप्ता का उपन्यास 'अरण्य में सूरज' का प्रकाशन 2009 में हुआ। उपन्यास में राजस्थान के मेवाड क्षेत्र में स्थित आदिवासी भील समाज का चित्रण है। भीलूवास की स्थिति यह है कि यहाँ बिजली नहीं है, भूख, शराब और टी. बी. से आदिवासी मर रहे हैं। अतएव आदिवासी बच्चे मजदूरी करने के लिए विवश हैं, अंततरू स्वामी परमानंद के समाज सुधार के प्रयासों से अरण्य में सूरज की स्थिति बनती है।

लेखिका महुआ माजी का उपन्यास ृमरंग गोड़ा नीलकण्ठ हुआ का प्रकाशन सन 2009 में हुआ। उपन्यास का कथ्य आदिवासियों की त्रासदी, उनकी जीवन संघर्ष से सम्पृक्त है। मरंग गोड़ा झारखंड में एक गाँव है जिसको केन्द्र में रखकर कथानक प्रस्तुत हुआ है। आदिवासी जीवन को व्यक्त करनेवाले सुप्रसिध्द साहित्यकार उपन्यास 'धुणी तपे तीर' का प्रकाशन वर्ष सन 2010 है। उपन्यास में ब्रिटिश शासन द्वारा आदिवासियों के शोषण को अभिव्यक्त किया गया है। उपन्यासकार रणेन्द्रग का 'गायब होता देश' सन 2014 में प्रकाशित हुआ है। उपन्यास में पूँजीवादी व्यवस्था एवं शासकीय व्यवस्था में आदिवासियों की स्थिति एवं गति का वास्तविक वर्णन है। उपन्यास में आदिवासियों के जल, जंगल, जमीन, अस्मिता एवं उनकी सांस्कृतिकता का चित्रण किया गया है। अश्विनीकुमार पंकज ने सन 2016 में 'माटी माटी अरकाटी' उपन्यास का सृजन एवं प्रकाशन किया। इस उपन्यास में आदिवासी समाज के अप्रवासी मजदूरों का दुरूख दर्द उभारा गया है। ब्रिटीश सरकार ने भारत के इन आदिवासियों को लालच देकर विदेश में प्रस्थापित किया और वहाँ उनकी जो दुर्दशा हुई उसका चित्रण उपन्यास में हुआ है।

आदिवासी शब्द का प्रयोग सन 1930 के दशक में हुआ जब नागपुर में आदिवासी महासभा की स्थापना हुई और इसके बाद मुंडा, संथाल, भील, गौंड, असुर आदि समाज आदिवासी कहा जाने लगा। आदिवासी उपन्यासकारों ने आदिवासियों के जीवन को हाशिए से निकालकर उन्हें मुख्य प्रवाह में लाने का भरसक प्रयत्न एवं सफल कार्य किया है। आदिवासी केन्द्रिगत उपन्यासों की परम्परा सन 1899 में लिखित जगन्नाथप्रसाद चतुर्वेदी के 'वसंत मालती' से होती है जो सद्य प्रकाशित अश्विनीकुमार पंकज के उपन्यास 'माटी माटी अरकाटी' तक व्याप्त है। यह

परंपरा एवं विवाह साहित्यकारों के आदिवासियों के प्रति संवेदना, आस्था–निष्ठा का प्रमाण ही है। उत्तरशती से आदिवासी उपन्यासों का सृजन होने लगा है। जो उपेक्षितों के प्रति न्याय देने की भावना का प्रतिफल है। विशेष उल्लेखनीय यह है कि आदिवासी नागर सभ्यता से दूरदराज के क्षेत्र में, घने पहाड़ों, जंगलों, घाटियों में निवास करते रहे हैं – जल, जंगल, जमीन इनकी थाती रही हैं। आदिवासी केन्द्रिगत उपन्यासों के विकास में कतिपय उपन्यासों का विशेष श्रेय रहा है यथा – मन्नन द्विवेदी का 'रामलाल', देवेन्द्रग सत्यार्थी का 'रथ के पहिये, डॉ. रांगेय राघव का 'कब तक पुकारूँ, राजेन्द्रग अवस्थी का 'जंगल के फूल', हिमांशु जोशी का अरण्य', मणि मधुकर का 'पिंजरे में पन्ना', राकेश वत्स का ृजंगल के आसपासृ, शिवप्रसाद सिंह का 'शैलूष', वीरेन्द्रग जैन का 'धार' एवं 'पार, संजीव का 'जंगल जहाँ शुरू होता है', भगवानदास मोरवाल का 'काला पहाड', मैत्रेयी पुष्पा का ' अल्मा कबुतरी', राकेश कुमार सिंह का 'पठार पर कोहरा', श्रीमती शरद सिंह का पिछले पन्ने की औरते। श्रीमती शरद सिंह, श्रीमती अजित गुप्ता, महुआ माजी स्त्री उपन्यासकारों के आदिवासी केन्द्रिगत उपन्यासों में योगदान दिया है।

संदर्भ

1.हिन्दी के आदिवासी जीवन केन्द्रिगत उपन्यासों का समीक्षात्मक अध्ययन, डॉ. बी. के. कलासवा, पृ. 273
2. रथ के पहिए – लोकयात्री के बीहड़ अनुभव, (प्रकाश मनु की भूमिका – देवेन्द्रग सत्यार्थी) पृ. 8–10
3. कब तक पुकारूँ – भूमिका – डॉ. रांगेय राघव
4. हिन्दी के आदिवासी जीवन केन्द्रिगत उपन्यासों का समीक्षात्मक अध्ययन, डॉ. बी. के. कलासवा , पृ. 113
5. जंगल जहाँ शुरू होता है, संजीव, मलपृष्ठ 2
6. अल्मा कबुतरी, मैत्रेयी पुष्पा, पृ.133
7.काला पहाड, तेजिन्दर, मलपृष्ठ 2
8.पूर्ववत्, पृ. 25
9. हिंदी में आदिवासी जीवन केन्द्रिगत उपन्यासों का समीक्षात्मक अध्ययन, बी. के. कलासवा, पृ. 88
10.पीछले पन्ने की औरतें, शरद सिंह, प्रकाशकीय वक्तव्य
11.पूर्ववत्, पृ. 146
12. रेत, भगवानदास मोरवाल, पृ. 111